Gyanvividha, Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2025 : PP-149-154

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-3 (July-Sept.) 2025
Page No.- 149-154
©2025 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

वेदप्रकाश भारती
शोधार्थी,
ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा.

Corresponding Author :

वेदप्रकाश भारती
शोधार्थी,
ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा.

समकालीन सामाजिक यथार्थ और मोहन मुक्त के काव्य

सारांश : समाज में दो धाराओं के बीच संघर्ष निरंतर होता रहता है, अच्छे विचार और बुरे विचार। समाज में यह दोनों विचार व्याप्त रहता है। समाज में निरंतर बुरे विचारों और अच्छे विचारों के बीच संघर्ष होना चाहिए ताकि बुरे विचारों का प्रभाव कम हो सके या खत्म हो जाए तथा अच्छे विचारों का जीत हो सके ताकि समाज में सभी इंसान हंसी-खुशी से रह सके यानि निर्वहन कर सके। 'मार्क्स ने भी समाज को दो वर्गों में बांटते है एक शोषित वर्ग है तो दूसरा शोषक वर्ग।' समाज में शोषक वर्ग अपना वर्चस्व और सत्ता को बनाए रखने के लिए अनेकों साजिशें और चालाकियाँ करते रहता हैं ताकि शोषक वर्ग में उसका निरंतर सत्ता कायम रहे। समाज में दूसरा वर्ग शोषित वर्ग है जो शोषक से त्रस्त होकर, इसके विरुद्ध संघर्ष किया और शोषित वर्ग को मुक्त करने का काम शुरु किया। भारतीय समाज के वर्तमान समय में सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक पर ब्राह्मणवादी, समांतवादी विचार का वर्चस्व कायम हो रहा है।

बीज शब्द: समाज, इंसान, आजादी, स्त्री, लोक, संघर्ष, शिक्षा, तार्किक, मानवता, प्रेम।

वैज्ञानिकता और तार्किकता की बात हम बुद्ध के समय से ही शुरुआत देखते है। बुद्ध कहते हैं "किसी भी बात को यूं ही मत मानो, किसी भी बात को मानने के लिए उसको सोचो, समझो और अपने तर्क की कसौटी पर कसो फिर उस बात को मानो।" इस बात से यही मतलब है की उनका कहना था की जो कोई भी बात कर रहा है उसके बात तर्क करके ही मानो। इसी कागद की लेखी का तो सारा फैलाया हुआ जंजाल है। लिखित ग्रंथ की वजह स ही आदमी में मिथक के डर को कायम करके उसको बेवकूफ, मूर्ख आदि बनाने का काम किया और उसको लूटने का काम किया इंसान और इंसान में आपसी भेदभाव को बढ़ाने का काम

किया। प्राचीन समय में हमारा धर्मग्रंथ लिखा गया जैसे मनुस्मृति, रामचरितमानस आदि लगभग सभी धर्मग्रंथ ने समाज को बांटने का ही काम किया। इसलिए कबीर कहते है-

"मेरा तेरा मनुओं कैसे इक होई रे।
मैं कहता हौं आँखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी।
मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यौ उरझाई रे।"[1]

कुछ लोग तुलसीदास को शास्त्र की तुलना में लोक में उनकी उपस्थिति को दर्ज करते हैं और उसे लोकवादी तुलसी कहते हैं- 'विश्वनाथ त्रिपाठी' ने तो 'लोकवादी तुलसीदास' करके एक किताब ही लिख डाली है। हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि 'आचार्य शुक्ल के लोकधर्म के प्रतिमान तुलसी हैं' और 'लोक में वर्णाश्रम व्यवस्था के पक्के समर्थक थे।' डॉ. त्रिपाठी ने लिखा है- "राम के सबसे निकट और आत्मीय कौन लोग हैं पति-परित्यक्ता अहल्या, जनकपुर के सामान्य बालक-राजकुमार नहीं, अयोध्या के सामान्य नागरिक, वन मार्ग में मिलने वाले ग्रामीण, केवट, शबरी, बन्दर-भालू, राजा सुग्रीव और युवराज अंगद से कहीं अधिक प्रिय और आत्मीय हनुमान, पक्षिराज गरुड़ नहीं, पक्षियों में भी निम्न गीध और काकभुशुडि। जो लोग राम-कथा के इन प्रतीकार्थों को नहीं समझते, वे सचमुच अधिकारी है तुलसी को सामन्ती व्यवस्था का पोषक और संकीर्णतावादी कहने के।"[2] कितनी चालाकी से यहाँ लोकवादी कहने और स्थापित करने का कोशिश किया है त्रिपाठी जी को यह बात समझने की जरूरत है कि ना कि इस बात को भूलने या नजर अंदाज करने की। त्रिपाठी ये भूल गए या नजर अंदाज किए। तुलसीदास के दास्यभाव से लिखी गई इसी रामचारितमानस के सुंदरकांड में वो लिखते है "ढोल गंवार शूद्र पशु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥" इसी चालाकी और होशियारी को तो समझना है। यहाँ विश्वनाथ त्रिपाठी ये भूल गए की तुलसीदास की क्या विचारधारा है और वो किस विचार का अगुआई कर रहे थे। तुलसीदास समाज के किस विचारधारा के करीब थे। जिस विचारधारा का अगुवाई तुलसी कर रहे क्या वो पूर्णतः लोक के पक्ष में है या नहीं, या फिर विश्वनाथ भी तुलसी शुक्ल की परंपरा को आगे बढ़ रहे हैं। इसलिए मुक्तिबोध ने कहा कि-"पार्टनर, तुम्हारी पॉलिटिक्स क्या है?" और जनकवि रमाशंकर यादव 'विद्रोही' जी कहते कहते है कि–"इस हक की लड़ाई में तुम किस तरफ हो?/आपसे कह रहा हूँ अब अपनी तरह/कि मैं तो सताए हुओं का तरफ हूं।"[3]

जो तुलसी को लोक के कवि बताते हैं वो बहुत ही भोले या नादान हैं या फिर चालाक हैं। जैसे तुलसी अपनी विचारधारा के प्रति तटस्थ है उस प्रकार ये सभी आलोचक है। जिस चालाकी से तुलसी ने लोक का सहारा लेकर लोक का ही नुकसान किया और लोक के नाम पर शास्त्र, 'सामंती व्यवस्था का पोषक और संकीर्णतावादी हैं और इसको स्थापित किया है। इससे तो यही पता चलता है की जो लोग तुलसी को लोक में स्थापित करते हैं। जबकि लोक के सच्चे वारिस या सच्चा लोकवादी हम कबीर को कहते हैं। मगर उसी कबीर को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल उन्हे खारिज कर दिया है और साहित्य की दुनिया ही बाहर करने का साजिश किया है। हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का शुक्र है कि उन्होंने उदार भाव को अपनाते हुए कबीर को साहित्य मे स्थापित करने का काम करते हैं। लोक के सच्चे वारिस को देखा जाय तो वो कबीर हैं तुलसीदास नहीं। आदिकाल में कबीर हैं तो उससे आगे आधुनिक काल में नागार्जुन, मुक्तिबोध, रमाशंकर यादव 'विद्रोही' आदि कवि हैं ये सभी सच्चे लोक के कवि हैं। इन्होंने कभी शास्त्र का पक्षधर नहीं लिया और ना उसका प्रचार प्रसार किया, बल्कि उसका पूर्णता रूप से विरोध किया एवं उसके मानडंडों का कड़ा प्रतिरोध किया। विरोध या प्रतिरोध करने का अर्थ है कि उस सच को सामने रखा, जो समाज के सामने सच को रखा नहीं गया। इस सच को साजिश

एक साजिश की तरह छुपाय गया। मिथक, झूठ की परंपरा, वर्चस्वादी संस्कृति को स्थापित करने की कोशिश की, इसलिए हम तुलसी को लोक में हम कदापि स्थापित नहीं कर सकते है।

बुद्ध ने सभी सामाजिक भेदभाव को खत्म करने लिए एक आंदोलन चलाया, उसके बाद से सामाजिक भेदभाव टूटना शुरू हुआ और लोग भेदभाव मिटाने का काम किया। मगर आज हम देखते हैं कि आज अच्छाइयों की प्रचार पसार तो बहुत बड़े पैमाने पर हो रहा है। इस प्रचार पसार का मतलब है कि झूठे काम को और बनावटी रुप देकर बड़े पैमाने पर प्रचार-प्रसार हो। पिछले कई दशकों से भारतीय समाज कई तरह की उथल-पुथल से गुजरा है। जहां समाज को प्रगति के रास्ते में निरंतर आगे जाना चाहिए मगर कुछ दूर चलकर ही फिर वह कई सदियों पीछे चल जा रहा है। आज पाखंड, अंधविश्वास, सांप्रदायिक तनाव, अभियक्ति का खतरा, सच बोलने पर पत्रकारों-साहित्यकारों की हत्या, सामाजिक असमानता, आर्थिक संकट और स्त्री चेतना आदि जैसे महत्वपूर्ण अनुभवों से गुजरते रहे हैं। समकालीन साहित्यकारों ने इन परिवर्तनों के इस यथार्थ को अपने साहित्य में स्थान दिया है।

भारतीय समाज को सूक्ष्म रुप से देखने से हमें पता चलता है कि समाज में जातिवाद, साम्प्रदायिकता, ब्राह्मणवादी, पितृसत्तात्मक सोच तथा दलित, आदिवासी, स्त्री, अल्पसंख्यक, थर्ड जेंडर आदि के प्रति संकीर्ण मनोभावनाएं सामाजिक संरचना को बहुत प्रभावित कर रही हैं। इसीलिए इन तमाम चीज़ों एवं चुनौतियों को यथार्थ रुप में उभरना समकालीन समय की जरुरत एवं आवश्यकता है। डॉ. दोड्डा शेषु बाबु का मत उल्लेखनीय है। वे लिखते हैं- "भारतीय समाज व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है, जहां हर एक जाति अपनी निचली जाति से भेदभाव दिखाना अपना अधिकार समझती है।"[4] सामाज में यह सदियों से चली आ रही इन रुढ़ियों, कुरीतियों, भेदभाव, असमानता जैसे खतरनाक समस्याओं को तार्किकता और वैज्ञानक पद्धति से लड़कर समाज को मुक्त करके नई सोच और विचार वाला समाज का निर्माण कर सकते है। वेद प्रकाश अमिताभ ने कहा है कि- "साहित्य का एकमात्र लक्ष्य है- मनुष्य को बेहतर मनुष्य बनाना एक अच्छा इंसान बनाना।"[5] शिक्षित और तार्किक एव जगरुक समाज का निर्माण करना प्रत्येक नागरिक का पहला दायित्व बनता है। इन्हीं मुद्दों को लेकर मोहन मुक्त साहित्य की रचना करते हैं।

सामाजिक घटनाओं के यथार्थ से रुबरु होने और उनकी गंभीरता को समझने के लिए हम साहित्य के सभी विधा की आवश्यकता है। समाज के यथार्थ को समझने के लिए हिंदी कविता भी ध्यान आकर्षित करती है। जिसमें समकालीन हिंदी कवि समाज में हो रहे तमाम घटनाओं पर प्रकाश डालते हुए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों पर विचार-विमर्श करता है। सामाजिक यथार्थ को कवि अपने अनुभव से अपनी कविताओं के माध्यम से समाज के ज्वलंत विषयों को यथार्थ रुप में प्रस्तुत करने का कोशिश करता है। ये कविताएँ आम जनता की अभिव्यक्ति होती हैं। कविताएँ भारतीय जन-मानस में चेतना और जागरुकता लाने के साथ-साथ झूठी व्यवस्था की कड़ी आलोचना करती हैं। इन कवियों का मुख्य उद्देश्य होता है कि समाज में लोकतांत्रिक और मानवीय मूल्यों को स्थापित कर स्वतन्त्रता, समानता एवं भाईचारे के सिद्धांतों पर बल देना होता है। इसी प्रक्रिया में हम रचनाकार की दृष्टि और विचारधारा से भी परिचित होते है। मैनेजर पांडे ने के शब्दों में- "साहित्य के रुप उद्देश्य और विकास का सामाजिक विकास से गहरा संबंध है। साहित्य मानव समाज के विकास का परिणाम है और प्रमाण भी। वह मनुष्य की सामाजिक चेतना की उपज है और सामाजिक चेतना के उपजाने वाला भी।"[6]

कवि मोहन मुक्त को पढ़ते हुए, आदिकवि सरहपा उसके बाद कबीर और आगे नागार्जुन,

मुक्तिबोध, हिन्दी गजलकार, दुष्यंत कुमार, अदम गोंडवी तथा रमाशंकर यादव 'विद्रोही' की याद आया। जिसमें सरहपा और कबीर वाला विद्रोहीपन, निर्भीकता देखने को मिलता है, जो हिन्दी साहित्य में स्थापित पारंपरिक रुढ़िवादी, समांतवादी सोच को चुनौती देने और इंसानियत को स्थापित करने के सारे बिम्ब-प्रतिबिंब को स्थापित किए है। मोहन मुक्त की कविताओं में नारी शोषण, उत्पीड़न, संघर्ष, विद्रोह और अस्मिता के सवाल बखूबी से नजर आते हैं। उनकी कविताएँ सामाजिक अन्याय, असमानता, तमाम मानवीय विरोधी तत्व एवं सत्ता के दमन के खिलाफ आवाज उठाती हैं। वे समाज में व्याप्त भेदभाव, स्त्री के संघर्ष, स्वतंत्रता और आजादी एवं शोषण को उजागर करते हैं। मर्द किस तरह से औरत को अपने ब्राह्मणवादी मानसिकता और पितृसत्तात्मक सोच से ग्रसित होकर उसे किस तरह नीच समझता है इसपर मोहन मुक्त ने उजागर किया है इस प्रकार से -

"मर्द की हर एक गाली औरत को दी गई गाली है
मर्द की हर एक गाली अपनी ही माँ का बलात्कार है
गालियां हाल की ईजाद हैं
गालियां हरामी नहीं हैं
वो कब्ज़े की औलाद है"[7]

मोहन मुक्त की स्त्री नायिका समाज और पुरुष के बनाए नीति कानून का स्वीकार नहीं बल्कि विरोध करती है और समाज में लड़कियों के हिम्मत का एक मिशाल कायम करती है। आज भी लड़कियों को अपना मनपसंद जीवन साथी चुनने का अधिकार नहीं है। देश की आजादी के कई दशक बीतने के बाद भी यही हाल है खासकर गाँव में तो आज भी लड़कियों को एक कठपुतली की भांति यह मानुवादी और पुरुषवादी समाज नाचता है और लड़कियां बेबस हो जाती है। सभी लड़कियों को उनसे सीखने और हिम्मत करने की जरूरत है। इस पुरुष वादी समाज की रुढ़िगत रीति रिवाज को तोड़ने की जरूरत है ऐसे-

"जिसने लड़े थे कई युद्ध एक साथ और जीते भी थे
अपने कम पढ़े लिखे दर्जी प्रेमी से शादी करने के लिये
वो युद्ध लड़ी थी"[8]

प्रेम संबंध टूट रहा है और प्रेम पर से विश्वास टूट रहा है। प्रेम संबंध में आज आर्थिक मजबूती बहुत मायने रखता है। इस बजारवाद ने प्रेम के अन्य मानवीय संबंध को भी अपने गिरफ्त में ले लिया है। आज हर रिश्ते को मुनाफा या नुकसान के तराजू में तौलकर निर्वहन करता है। मैनेजर पांडेय लिखते है - "पश्चिम के उपभोक्तावादी समाज और मुक्त बाजार की व्यवस्था में मनुष्य और संस्कृति की दुर्गति की ओर संकेत करते हुए ऑक्टोवियो पॉज़ ने लिखा है कि, "जिस समाज में अधिक उपभोग के लिए अधिक से अधिक उत्पादन का उन्माद बढ़ता है, वह विचारों, भावनाओं, कला, प्रेम, मित्रता और मनुष्य को भी उपभोग की वस्तु बना देता है। वहाँ हर चीज खरीदी जाती है, उसका उपभोग होता है और अंत में वह कूड़ेदान में फेंक दी जाती है।"[9] बाजार ने आज मानवीय संबंध में भी आर्थ को समलित सम्मिलित कर दिया। मानवीय संबंध को कुँवर नारायण से बखूबी से पहचान कार उसे कविता के रूप में प्रस्तुत किया है। ये समकालीन समाज की उन विसंगतियों को हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं कि कैसे मानवीय संबंध भी बाजार के द्वारा आज संचालित हो रहे हैं-

"अगर तुम मालामाल हो
तो हर आदमी एक बिकाऊ माल है
आज जबकि हर चीज का दाम सिर्फ बढ़ने की ओर है
आदमी की कीमत में भारी छूट का शोर है"[10]

आज समय कुछ ऐसा या गया है कि आज समाज में शिक्षक, डॉक्टर, प्रोफेसर आदि बनने के लिए छात्रों को शिक्षकों को आज आंदोलन करना पड़ रहा है। आज बेहतर और ऊंची शिक्षा के लिए लड़ना पड़ रहा है। यह कैसा शिक्षित समाज का निर्माण हो रहा है सरकार एक तरफ तानाशाही रवैया अपना रही है और एक दूसरी तरफ आज अंधभक्त का संख्या बढ़ रहा है। पत्रकार सरकार की गुलामी कार राहया है

जनता भूख से, महिला सुरक्षा से युवा रोजगार से किसान कर्ज से आदि त्रस्त हो रहा है। अंधविश्वास, रुढ़िवादी, पाखंड, सांप्रदायिकता आदि का दिखावा बहुत तेजी से हो रहा है। इन सभी कारणों से इंसान आत्महत्या करने को मजबूर हो रहा है जिसे मोहन मुक्त इस तरह लिखते है-

"सीवर में दम घुटने से हुई मौत
या कर्ज में डूब कर मरा किसान
सब हुए हैं हत्या के शिकार
जौहर हत्या है, सती हत्या है
बेरोज़गार असफल छात्र या नाकाम प्रेमी
जो सुसाइड नोट छोड़कर मरते हैं
दरअसल वो मारे गए हैं
कोई इंसान नहीं करता आत्महत्या
इंसान कर ही नहीं सकते आत्महत्या"[11]

भारत के सभी समाज में स्त्री के अस्तित्व को दोयम दर्जे का ही स्थान प्राप्त है। सदियों से स्त्री जीवन की त्रासदी यह है कि मुख्यधारा के समाज में वह अपनी आज़ादी, अस्मिता, आत्मसम्मान तथा अधिकारों के लिए सदियों से संघर्ष करती नज़र आती है। वर्तमान समय में स्त्री जीवन अनेक समस्याओं तथा चुनौतियों से गुज़र रही है। दलित और मुस्लिम महिलाओं की स्थिति समाज में कठिनयों और संघर्षों से भरी हुई है। इस सन्दर्भ में ममता कालिया के विचार बेहद प्रासंगिक हैं। वे अपनी पुस्तक 'भविष्य का स्त्री विमर्श' में लिखती हैं- "आज का समय स्त्री के लिए कई नयी चुनौतियां लेकर आया है। ऐसा लगता है वर्तमान समय प्रागैतिहासिक काल से भी ज्यादा पिछड़ा हुआ तथा स्त्री के प्रति आक्रामक है। आधुनिक तालिबान हमारे आचरण, विचरण, वस्त्र विन्यास और प्रसाधन के नियन गढ़ रहे हैं। इन्हें हमारी आज़ादी से भय लग रहा है। उन्हें हमारे अस्तित्व, व्यक्तित्व और विकास पर संदेह है।"[12]

मोहन मुक्त जनता के दर्द, बेबसी, तकलीफ आदि को ही सिर्फ बयां नहीं करते है बल्कि उसे सही राह भी दिखते है वो जनता को अपने हक और अधिकार के आवाज उठाने और बुलंद करने की भी बात कहते है जब तक गरीब दलित किसान छात्र युवा मजदूर महिला आदि सभी अपने अधिकार के लिए जब तक आवाज नहीं उठायेंगे उनको वो हक और अधिकार नहीं मिलेगा क्यों ये सामंती ब्राह्मणवादी लोग औरों का भी हक खुद ही खा जाना चाहते हैं यहां कवि यह कहते हैं-

"वक़्त कम है, ज़िन्दगी एक है
चुनो सही लड़ाई
जिंदा करो स्थगित युद्ध
पहचानो मुख्य दुश्मन
असल गुलामी राजनैतिक नहीं, सांस्कृतिक है
असल वंचना राजनैतिक नहीं, सांस्कृतिक है
असल जंग राजनैतिक नहीं, सांस्कृतिक है"[13]

क्रांति और विद्रोह को लेकर कवि ने एक और स्पष्टता की जो आज समय में बिल्कुल हकीकत है जिसे सभी को जानने और समझने की बहुत जरूरत है जिसे उसके असली दुशमन और दोस्त के फर्क यानी अंतर को समझ सके। आज कुछ चालक और शातिर लोग बहुजन के खेम में कराँती के घुस आए है और इधर के हक और अधिकार को अपना पेट चलाने के काम कर रहे हैं। इसको समझने के लिए आसान भाषा में कहे तो आज के जो चुनावी पार्टी के राजनेता है जो चुनाव जीतने से पहले किसी और पार्टी में रहते है और जीतने के अन्य पार्टी में शमिल हो जाते है –

"अंतर था
गहरा और आधारभूत अंतर
समझ का नहीं ज़रूरत का अंतर
क्रांति तुम्हारी समझ थी
और मेरी ज़रूरत
तुम्हारी समझदारी बदल जाने से
मेरी ज़रूरत नहीं बदलती
लेकिन फिर भी हम दोनों एक ही रास्ते पर हैं
तुम अपनी समझदारी को दुरुस्त करने

वापस लौट रहे हो
मैं अपनी ज़रूरत पूरी करने आगे जाऊँगा..."[14]

निष्कर्ष : मोहन मुक्त अपनी पुस्तक हिमालय दलित है में समाज में मानव के साथ हो रहे तमाम भेदभाव, असमानता, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करते है और उसे उसको अपनी संग्रह में साहित्य और पाठकों के सामने लाते है। दलित, किसान, मजदूर, आदिवासी, स्त्री एवं अल्पसंख्यक समाज की गतिविधियों, विसंगतियों, समस्याओं तथा चुनौतियों को उजागर करते है। साथ ही परम्परावादी मानसिकता का खंडन करते हुए वर्चस्ववादी विचार एवं व्यवस्था का भी पर्दाफाश किया है। कवि की संवेदनाएं, विद्रोही स्वर तथा सामाजिक सरोकार इन कविताओं में दिखाई देते हैं। ये कविताएँ ज़मीन से जुड़ी होने तथा यथार्थ को चित्रित करने के साथ-साथ जनांदोलनों, साम्प्रदायिक सद्भाव, लोकतांत्रिक, मानवीयता आदि मूल्यों से भी परिचित कराती हैं।

संदर्भ सूची: -

1. कबीर बानी, अली सरदार जाफ़री, प्रकाशन : राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण, 2010, पृष्ठ-100.
2. विश्वनाथ त्रिपाठी, लोकवादी तुलसीदास, राधाकृष्ण प्रकाशन लिमिटेड नई दिल्ली 2007, पृष्ठ-25.
3. रमाशंकर यादव विद्रोही, नई खेती, नवारुण, गाजियाबाद, 2018, पृष्ठ-161.
4. डॉ. दोड्डा शेषु बाबु, 'हिंदी दलित आत्मकथाओं में चित्रित उत्पीड़न की समस्या: प्राथमिक शिक्षा के सन्दर्भ में ' शोध संचार बुलेटिन, अंक-जुलाई-सितम्बर-2020, पृष्ठ-225.
5. हिंदी साहित्य इक्कीसवीं सदी की चुनौतियां, डॉक्टर वेदप्रकाश अमिताभ का लेख, संपादक डॉक्टर कीर्ति केसर, नवराज प्रकाशन दिल्ली 2002, पृष्ठ-150.
6. शब्द और कर्म, मैनेजर पांडे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृष्ठ-32.
7. मोहन मुक्त,हिमालय दलित है, समय साक्ष्य , देहरादून, 2022 पृष्ठ-245.
8. वही, पृष्ठ-76.
9. मैनेजर पांडेय, आलोचना की सामाजिकता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ-162.
10. कुँवर नारायण, कोई दूसरा नहीं, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2002, पृष्ठ-113.
11. मोहन मुक्त,हिमालय दलित है, समय साक्ष्य , देहरादून 2022, पृष्ठ-192.
12. ममता कालिया, भविष्य का स्त्री विमर्श, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2015, पृष्ठ-10.
13. मोहन मुक्त, हिमालय दलित है, समय साक्ष्य, देहरादून 2022, पृष्ठ-45.
14. वही, पृष्ठ-95 .

•